अध्याय : छः

अध्याय : छः

नामवर सिंह का संपादकीय विवेक और 'आलोचना' का संपादन

अक्टूबर, 1951 से 'आलोचना' पत्रिका अस्तित्त्व में आई। सन् 1951 से संस्थापित-संपादित होकर अप्रैल-जून 1990 ई. तक प्रकाशित होती रही। अपने प्रकाशन की लंबी अवधि में 'आलोचना' का प्रकाशन बीच-बीच में बाधित भी हुआ और 'आलोचना' कई संपादकीय विवेक से होकर भी गुजरी। 'आलोचना' पत्रिका के संपादन-प्रकाशन के इतिहास पर नज़र डालने से यह स्पष्ट होता है कि 'आलोचना' अपने संपादन-प्रकाशन के आरंभिक दौर में ही कई संपादकों के हाथों संपादित-होती रही है, और इसी आरंभिक चरण में उसका प्रकाशन बीच-बीच में बंद भी हुआ। 'आलोचना' का आरंभिक दौर 1951 से दिसंबर- 1966 (पूर्णांक-37) तक माना जा सकता है। जिसे छोटाराम कुम्हार ने 'आलोचना' पत्रिका के सर्वेक्षणात्मक अध्ययन में 'पहला चरण' कहा है।[1] इस 'पहले चरण' में इसके संपादन एवं स्थापना का कार्य शिवदानसिंह चौहान जैसे प्रगतिशील चिंतक-आलोचक के हाथों हुआ। इनके संपादन में छः अंक निकलने के उपरांत ही 'आलोचना' का संपादन 'धर्मवीर भारती', 'रघुवंश', 'विजयदेवनारायण साही', 'ब्रजेश्वर वर्मा', जैसे साहित्यकारों एवं आलोचकों की एक संपादन समिति द्वारा संपादित होने लगी। इस संपादन समिति ने अप्रैल-जून 1953 से जनवरी-मार्च, 1956 ई. तक 'आलोचना' के ग्यारह अंकों का संपादन किया। इसके उपरांत पूर्णांक-18 से 26 तक (अप्रैल- 1956 से जून-अप्रैल 1959 ई. तक) का संपादन नंददुलारे वाजपेयी ने किया। तीन वर्षों में 9 अंक ही आपके संपादन में निकल सके। वाजपेयी जी के संपादन काल में 'आलोचना' एक वर्ष के लिए बंद भी रही। अप्रैल, 1959 से 'आलोचना' का प्रकाशन फिर बंद हुआ। इस बीच 'आलोचना' तीन-से-चार वर्ष बंद रही। जुलाई, 1963 से शिवदान सिंह चौहान के हाथों इसका पुनर्प्रकाशन शुरू हुआ। स्पष्ट है कि 'आलोचना' के संपादन-प्रकाशन का पहला चरण

अत्यंत ही उतार-चढ़ाव, व्यवधान आदि से युक्त रहा है। इसी चरण में यह कई संपादकीय विवेकों से होकर गुजरी है। नामवर सिंह द्वारा 'आलोचना' का संपादन भार ग्रहण करने के उपरांत ही इस उतार-चढ़ाव, व्यवधान और इसके संपादकीय फेरबदल का अंत हुआ। नामवर सिंह ने 'आलोचना' का संपादन अप्रैल-जून 1967 से अप्रैल-जून 1990 ई. तक की लंबी अवधि तक किया। इस दीर्घ अवधि में 'आलोचना' के 93 अंकों का उन्होंने संपादन किया। नामवर सिंह के संपादन की इस अवधि को छोटाराम कुम्हार ने 'आलोचना' पत्रिका का 'दूसरा चरण' कहा है।[2] 'आलोचना' पत्रिका के संपादन का यह दूसरा चरण ही सबसे स्थायित्व, दीर्घजीवी एवं वैचारिक संघर्षोंवाला और साहित्य को दिशा देने में निर्णायक भूमिका अदा करनेवाला रहा है।

इस प्रकार उपर्युक्त विवरणों स्पष्ट है कि 'आलोचना' पत्रिका अपने संपादन-प्रकाशन की दीर्घ यात्रा में कई संपादकीय विवेक से होकर गुजरी। प्रत्येक संपादक ने भिन्न-भिन्न साहित्यिक दृष्टियों से युक्त होकर 'आलोचना' का संपादन किया। और 'आलोचना' को हिंदी आलोचना की उत्कृष्ट कोटि की पत्रिका बनाने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। इस संदर्भ से उल्लेखनीय है, शिवदान सिंह चौहान द्वारा संपादित 'आलोचना' का 'इतिहास विशेषांक' (पूर्णांक-05-6 अक्टू-दिसं 1952 एवं जन-मार्च. 1953) आरंभिक चरण के प्रमुख अंकों में यह विशेषांक सर्वाधिक चर्चित रहा है। इसके अतिरिक्त धर्मवीर भारती और उनके सहयोगी संपादक मंडल ने भी 'आलोचना' विशेषांक (पूर्णांक-09 अक्टू-दिसं. 1953 ई) उपन्यास विशेषांक (अक्टू-दिसं. 1954 ई.) अपने संपादन में संपादित किया। नंददुलारे वाजपेयी के संपादन में जुलाई-सितं. 1956 ई. में 'आलोचना' का 'नाटक विशेषांक' प्रकाशित हुआ। इसके अतिरिक्त शिवदानसिंह चौहान ने अपने पुनः संपादन में 'आलोचना' का 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य विशेषांक' (पूर्णांक- 33, 34, 35, 36 एवं 37) अप्रैल-जून 1965 से अक्टू-दिसं. 1966 तक क्रमवार ढंग से अंक- 1, 2, 3, 4, 5 अंक निकाले। इससे स्पष्ट है कि 'आलोचना' पत्रिका अपने आरंभिक संपादकों के संपादन के द्वारा ही "हिंदी

पत्रिकाओं की परंपरा में अपने ठोस, गंभीर स्तर और साहित्य विषयक अपनी वयस्क जागरूकता के रूप में 'आलोचना' सदैव एक पठनीय प्रमाण रही है।... हिंदी की सचित्र गुलदस्तानुमा पत्रिकाओं में होनेवाली साहित्य की सतही और वैयक्तिक पूर्वाग्रहों से युक्त चर्चाओं से और एकाध मासिकों की कलेवर-शून्यता से मुक्ति-स्थल का काम अपने प्रकाशन-काल में 'आलोचना' ने निरंतर किया है।"[3] इससे स्पष्ट है कि अपने संपादन प्रकाशन के पहले चरण में ही "आलोचना' हिंदी आलोचना-क्षेत्र की एकमात्र प्रतिनिधि पत्रिका के रूप में अपनी पहचान कायम कर चुकी थी।"[4] जब यह पत्रिका अपने संपादन के दूसरे चरण में आई यानी जब नामवर सिंह के संपादन में आई तब इसे स्थायित्व मिला और संपादकीय फेरबदल से मुक्ति मिली। यह दूसरा चरण जो कि "सन् 1967 से 1990 ई. तक फैला हुआ है, जिसमें एक ही संपादक के हाथों से सँवर कर उसे हिंदी आलोचना के क्षितिज को व्यापक बनाने की भूमिका निभाने का अवसर प्राप्त हुआ है।"[5] नामवर सिंह द्वारा दीर्घ अवधि तक 'आलोचना' का संपादन स्वयं उनकी संपादकीय क्षमता का स्पष्ट बोध कराता है। दीर्घ अवधि तक संपादन से जुड़ने के कारण ही छोटाराम कुम्हार ने यह कहा है कि " 'आलोचना' डॉ0 नामवर सिंह के लिए और 'आलोचना' के लिए डॉ0 नामवर सिंह दोनों एक दूसरे के लिए सौभाग्य का विषय कहे जा सकते हैं"[6] इस सुखद संयोग और "अपनी सुघड़ संपादन-कला और विवेकशील आलोचकीय दृष्टि से 'आलोचना' को निखारकर डॉ0 नामवर सिंह ने हिंदी आलोचना के क्षेत्र में उसके महत्त्व को चिरस्थायी बना दिया।"[7] विजेंद्रनारायण सिंह का मत है कि "यह तो मानना ही होगा कि 'आलोचना' को उन्होंने अपने संपादकत्व में प्रथम श्रेणी की पत्रिका बनाया।"[8] वस्तुतः नामवर सिंह के संपादन में 'आलोचना' पत्रिका हिंदी आलोचना के क्षेत्र में युग परिवर्तनकारी भूमिका के रूप में स्थापित हुई।

'आलोचना' के प्रत्येक संपादक के संपादकीय विवेक का अपना महत्त्व है, और उनकी कुछ सीमाएँ हैं, किंतु मेरे शोधकार्य संबंधी अध्ययन की सीमा के अंतर्गत नामवर सिंह संपादित

'आलोचना' और उनका संपादकीय विवेक है, इसीलिए इस अध्याय में केवल नामवर सिंह के संपादकीय विवेक का ही विस्तार से अध्ययन प्रस्तुत किया जा सकेगा। यह अध्ययन भी उनके द्वारा संपादित साप्ताहिक 'जनयुग' (1965) तथा अन्य पुस्तकें 'रामचंद्र शुक्ल संचयन', हजारीप्रसाद द्विवेदी संकलित निबंध' तथा उनके प्रधान संपादकत्व में प्रकाशित 'आलोचना' के सहस्त्राब्दी अंकों की विस्तृत क्षेत्र तक केंद्रित न रहकर केवल और केवल 'आलोचना' पत्रिका के संपादन की सीमा तक सीमित रहेगा। इस अध्ययन में हमें यह देखना है कि नामवर सिंह के लिए 'आलोचना' का संपादन केवल 'सुखद संयोग' था, जिसे छोटाराम कुम्हार 'सौभाग्य का विषय' कहते हैं; वह था, अथवा नामवर सिंह की अपनी कोई संपादकीय दृष्टि भी थी, जिससे हिंदी आलोचना में उसका चिरस्थायी महत्त्व स्थापित हो सका? नामवर सिंह का वह कौन-सा संपादकीय विवेक है जो उन्हें 'आलोचना' के पूर्व संपादकों से एकदम अलग खड़ा कर देता है?? इसके अतिरिक्त नामवर सिंह का संपादकीय विवेक स्वयं उनके 'आलोचनात्मक विवेक' से किस प्रकार संबद्ध है; इसे भी इस अध्याय में देखा जा सकेगा। 'आलोचना' का संपादन करते हुए उन्होंने किस प्रकार की संपादकीय भूमिका का निर्वाह किया? इसके साथ-साथ आलोचना का संपादन करते हुए हिंदी आलोचना में क्या युगांतरकारी कार्य किया? 'आलोचना' पत्रिका के रूप विधान में उन्होंने क्या परिवर्तन किया, और उसमें उन्होंने क्या जोड़ा? इसके अतिरिक्त उनकी संपादकीय विवेक की सीमाएँ क्या रही हैं? आदि प्रश्नों के उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास इस अध्याय में किया गया है।

नामवर सिंह के संपादकीय विवेक को समझने के लिए प्रथमतः तो यह ज्ञात करना होगा कि उनके द्वारा 'आलोचना' के संपादन-दायित्व संभालने से पूर्व 'आलोचना' पत्रिका का स्वरूप कैसा था, उसका रूप विन्यास क्या था? और नामवर सिंह ने उसमें क्या परिवर्तन किए? जो उन्हें अपने पूर्ववर्ती संपादकों से अलग करती है। इस संदर्भ में जब 'आलोचना' पत्रिका के संपादन के इतिहास को देखते हैं तो नामवर सिंह के सबसे निकट प्रतिद्वंद्वी के रूप में हमें शिवदानसिंह चौहान

दिखाई पड़ते हैं। ध्यातव्य है कि 'आलोचना' पत्रिका को स्थापित करने और उसका प्रथमतः संपादन करने का श्रेय शिवदान सिंह चौहान को जाता है। बीच में अन्य संपादकों के संपादन के उपरांत जब 'आलोचना' का प्रकाशन 1959 ई. में बंद हुआ तो उसे 1963 ई. में पुनर्प्रकाशित करने एवं उसका संपादन-दायित्व संभालने का श्रेय भी आपको ही जाता है। इसके अतिरिक्त, शिवदानसिंह चौहान के हाथों से ही 'आलोचना' का संपादन-दायित्व नामवर सिंह के हाथों में आया। शिवदान सिंह चौहान के हाथों से 'आलोचना' के नामवर सिंह के संपादन में आने की पूरी प्रक्रिया को ही एक विवादित घटना के रूप में देखा जाता है।

इस प्रक्रिया को शिवदानसिंह चौहान के हाथ से 'आलोचना' को छिन लिए जाने के रूप में देखा गया।[9] स्वयं शिवदान सिंह चौहान इस 'संपादक-फेरबदल' को 'आलोचना-कांड' कहते हैं।[10] पुरुषोत्तम अग्रवाल का मत है कि इस 'संपादकीय फेरबदल' ने शिवदान सिंह चौहान को "बहुत आहत किया इस 'आलोचना कांड' ने आलोचक चौहान को कहीं बहुत गहरे में तोड़ दिया।"[11] और "वे हिंदी साहित्य जगत से सायास रूप से तटस्थ और संन्यस्त हो गए।"[12] इससे स्पष्ट है, 'आलोचना' के संपादन को लेकर उनके मन में किस प्रकार की तकलीफ रही है क्योंकि 'आलोचना' को लेकर उनके मन में सिर्फ ललक या उत्साह ही नहीं रहा, बल्कि उनके पास अपनी एक संपादकीय दृष्टि थी। इस संपादकीय दृष्टि को जाने बिना नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका को, और उसकी संपादकीय दृष्टि को समझा ही नहीं जा सकता है। यह अंतर ही नामवर सिंह के आरंभिक संपादकीय विवेक से हमारा परिचय कराएगा। मधुरेश द्वारा लिखित 'मार्क्सवादी आलोचना और शिवदान सिंह चौहान' पुस्तक जिसमें चौहानजी का हिंदी आलोचना के अवदान पर विस्तार से चर्चा की गई है। इस संदर्भ से हटकर यदि हम विचार करें तो मधुरेश जी ने इस पुस्तक को लिखने का मन प्रदीप सक्सेना के अतिथि संपादन में संपादित 'पहल' पत्रिका के 'मार्क्सवादी आलोचना अंक' में लिखित अपने लेख के उपरांत बनाया था।[13] यह स्थिति किसी भी संपादक के

संपादकीय विवेक की महत्ता को ही स्थापित करता है, जिससे किसी बड़े कार्य की नींव पड़ जाए। जिसे आगे सुचिंतित ढंग से पुस्तक आदि का प्रकाशन हो सके। इस संदर्भ में हमें यह भी देखना होगा कि नामवर सिंह के संपादन में प्रकाशित लेखकों और उनके लेखों से कितनी पुस्तकों-ग्रंथों के प्रणयन की नींव पड़ी।

बहरहाल, मधुरेश अपनी उक्त पुस्तक में शिवदान सिंह चौहान की 'आलोचना' पत्रिका के दो दौरों के संपादन की विस्तार से चर्चा करते हैं, उनके संपादकीय विवेक की महत्ता का उद्‌घाटन करते हैं। शिवदान सिंह चौहान के संपादन के पहले चरण में संपादन-कला का महत्त्व उद्‌घाटित करते हुए लिखते हैं कि ''एक आलोचक और संपादक के रूप में शिवदान सिंह चौहान की उल्लेखनीय भूमिका यह रही कि उन्होंने आलोचना को अतिरेक और असंतुलन से बचाने के लिए भरपूर वैचारिक संघर्ष किया और आलोचना को अपने समय के ज़रूरी सवालों से जोड़ा।''[14] अपने संपादन के दूसरे दौर में भी शिवदान सिंह चौहान इस पत्रिका को हिंदी आलोचना की उत्कृष्ट पत्रिका के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। ''शिवदान सिंह चौहान ने जिस तरह अपने समय की रचनाशीलता का बैरोमीटर बनाने की संपादकीय क्षमता का परिचय पहले दौर की 'आलोचना' में दिया था, वह इस दूसरे दौर की 'आलोचना' में भी देखा सकता है। स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य विशेषांक तो हर दिशा में एक संदर्भ कोश का काम करता है।''[15] इस प्रकार शिवदान सिंह चौहान ने अपने संपादन में 'आलोचना' को वह रूप दिया जिसे 'समालोचक' जैसी हिंदी आलोचना की उत्कृष्ट पत्रिकाएँ भी उस महत्ता को नहीं पा सकीं। इस प्रकार नामवर सिंह के संपादन में जब 'आलोचना' पत्रिका आई तो हिंदी आलोचना में वह पूर्व स्थापित थी। शिवदान सिंह चौहान जब इसका दूसरी बार संपादन करने गए तो साहित्यिक वातावरण, एवं दृष्टियों में बहुत सारा परिर्वतन हो चुका था। नई कविता अपने अंतिम दिन की गणना में संलग्न थी। साठोत्तरी कविता जिसमें युवा आक्रोश, क्रोध युक्त रचनाओं का दौर था। कहानियों में अकहानी का दौर अपना रूप धारण कर

रहा था। साहित्य की आलोचना में रूपवादी- कलावादी- अस्तित्त्ववादी- आधुनिकतावादी साहित्य चिंतन के दबाव में प्रगतिवादी अथवा मार्क्सवादी आलोचना अपनी पुरानी अवधारणाओं को ही दुहरा रही थी। स्तालिनोत्तर मार्क्सवादी चिंतन के आरंभ होने के बावजूद यह स्थिति देखी जा सकती है। राजनीति में नेहरू युग का अंत हो चुका था। यह शिवदान सिंह चौहान के संपादन के दूसरे चरण की साहित्यिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक परिस्थितियों की विहंगम दृष्टि से अवलोकन है। ऐसी दशा में शिवदान सिंह चौहान द्वारा संपादित 'आलोचना' ने अपने समकालीन साहित्यिक-सांस्कृतिक परिदृश्य के मूल्यांकन में कितनी सफल-असफल रही इसे मधुरेश स्वयं स्पष्ट करते हैं कि "यह ठीक है कि इस दूसरे दौर की समीक्षाओं में पहले दौरवाली तेजस्विता नहीं है, लेकिन चयन की उदार दृष्टि और उल्लेखनीय रेखांकन की सजगता एक हद तक यहाँ भी मौजूद है। अज्ञेय, भारती सहित नई कविता के अनेक महत्त्वपूर्ण कवियों की अनेक उल्लेखनीय कृतियाँ इसी कालावधि में छपीं लेकिन 'आलोचना' के सामान्य अंकों में उनका नोटिस नहीं लिया गया। नई कहानी का आंदोलन अपने पूरे उत्कर्ष के बाद ढलान की ओर था, लेकिन उसके लेखकों के निजी कहानी-संग्रह की कोई समीक्षा नहीं छपी। इसी तरह इतिहास, संस्कृति और कला की उल्लेखनीय पुस्तकों पर जिस तरह दौर की 'आलोचना' में समीक्षाएँ छपीं, यहाँ वैसा कुछ उस प्रमुखता से दिखाई नहीं देता।"[16] शिवदान सिंह चौहान द्वारा संपादित 'आलोचना' के दूसरे दौर की वस्तुस्थिति का परिचय उपर्युक्त उद्धरण से हम प्राप्त कर सकते हैं। इस परिस्थितियों में 'आलोचना' का संपादन के लिए एक नवीन संपादकीय विवेक युक्त तेजस्वी और प्रखर संपादक की आवश्यकता बनी हुई थी, जिसकी पूर्ति नामवर सिंह द्वारा 'आलोचना' के संपादन-दायित्व को अपने हाथों में लेने से हुई। इस रूप परिवर्तन की कितनी आवश्यकता बनी हुई थी इसे स्वयं 'आलोचना' में होनेवाले परिवर्तन के सूचनार्थ प्रकाशित विज्ञापन में भी देखा जा सकता है। विज्ञापन-सूचना में बताया गया है कि "त्रैमासिक 'आलोचना' अब डॉ0 नामवर सिंह के संपादकत्व में 'नए रूप' से निकलने जा रही है। साहित्य और साहित्य के सामाजिक

संदर्भों में इस बीच में जो परिवर्तन हुए हैं, उनको देखते हुए 'आलोचना' की रूपरेखा में आवश्यक परिवर्तन वांछनीय है। इस दृष्टि से हम 'आलोचना' को एकेडेमिक क्षेत्र से अधिक व्यापक क्षेत्र के उपयुक्त एक जीवंत त्रैमासिक का रूप देना चाहते हैं जिसमें जीवन संस्कृति और साहित्य के नए-से-नए स्पंदन का प्रतिफलन होगा।"[17] स्पष्ट है कि 'सामाजिक-साहित्यिक परिवेश के रूप परिवर्तन आदि के कारण 'आलोचना' के संपादन में बदलाव लाया गया था। जबकि मधुरेश अपनी पुस्तक में विविध निजी जीवन संदर्भों, पत्रों और 'आलोचना-कांड' आदि हवालों से स्पष्टतः इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि 'आलोचना' से शिवदान सिंह चौहान को "पर्याप्त रहस्यमय और षड्यंत्रपूर्ण ढंग से उन्हें सत्ताच्युत कर दिया गया।"[18]

ध्यान देने की बात है कि यह 'आलोचना-कांड' तब प्रकाश में आया जब नामवर सिंह ने 'आलोचना' पत्रिका के महत्त्व को हिंदी आलोचना के इतिहास में चिरस्थायी बना दिया। आरंभ में इस संपादक फेरबदल' को न तो चौहान जी ने गंभीरता से लिया और न ही उस घटना को उनके समकालीन आलोचकों-रचनाकारों ने विशेष रूप से उल्लेखनीय माना। स्पष्ट है कि इस 'आलोचना कांड' की चर्चा नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' के अत्यंत ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त कर लेने के बाद ही शुरू हुई। इसका साक्ष्य 'आलोचना' पत्रिका के नवांक-01-02 का 'विकल्प-2 में प्रकाशित किन्हीं 'प्रभात' नाम के समीक्षक की समीक्षा भी है। इस समीक्षा में इस 'आलोचना कांड' के विषय में कोई चर्चा नहीं की गई है। किसी ने भी उसके आरंभ में नहीं सोचा होगा कि, 'आलोचना' अपने पूर्वस्थापित रूप से कई कदम आगे निकल जाएगी। जिसको अग्रणी पत्रिका बनाने में नामवर सिंह के संपादकीय विवेक का अन्यतम योगदान है। मधुरेश, शिवदान सिंह चौहान के संपादकीय विवेक की चर्चा करते हुए सिर्फ व सिर्फ चौहानजी के संपाकीय विवेक की ही चर्चा करते हैं, उसके पक्ष-प्रतिपक्ष के रूप में नामवर सिंह के संपादकीय विवेक की नहीं। यदि नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' के नवांक-01 (अप्रैल-जून 1967 ई.) की चर्चा करते भी हैं तो इन शब्दों में "पूर्णांक

38 अप्रैल-जून 67 नामवर सिंह के संपादन में निकला यह पूरी तरह से एक नए संपादक की छापवाला अंक है। इसमें सामग्री की दृष्टि से एक ओर यदि 'चुनाव के बाद का भारत' जैसे विषय पर परिसंवाद है, वहीं पहली बार कविताओं की उपस्थिति भी है। जिस बहुत से साहित्य को शिवदान सिंह चौहान ह्रासशील व्यक्तिवादी और त्रिशंकुओं के साहित्य के रूप में खारिज करते हुए उससे वैचारिक संघर्ष करते रहे थे, उन सबको लेकर एक व्यापक और साझे मंच की कल्पना यहाँ स्पष्ट लक्षित की जा सकती है।''[19] नामवर सिंह के 'आलोचना' के प्रथम अंक एवं उसके संपादकीय विवेक को लेकर दिया गया यह वक्तव्य संगत एवं सुचिंतित नहीं कहा जा सकता है। इस संदर्भ में नवांक-1 (अप्रैल-जून 1967) का संपादकीय वक्तव्य, उसमें आयोजित 'परिसंवाद' में भाग लेने वाले लेखकों-विचारकों के मत, तथा इसमें प्रकाशित लेखकों के लेख स्वयं इस मत के पक्षपातपूर्ण रवैये को उद्घाटित कर देते हैं। ध्यातत्व है कि नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' का नवांक-01 में 'चुनाव के बाद का भारत' विषय पर आयोजित 'परिसंवाद' में सहभागिता लेनेवाले लेखकों के नाम ही यदि लिए जाएँ जैसेरामविलास शर्मा, रमेशकुंतल मेघ, आचार्यहजारी प्रसाद द्विवेदी, मन्मथनाथ गुप्त, राजकमल चौधरी, विष्णुप्रभाकर, आदि के साथ-साथ केदारनाथ सिंह, धूमिल, भारतभूषण अग्रवाल, रघुवीर सहाय, मलयज, सुरेंद्र चौधरी, विष्णुचंद्र शर्मा, आरंभिक निर्मल वर्मा और अशोक वाजपेयी आदि इस अंक के विविध संदर्भों में प्रकाशित हैं। क्या इन रचनाकारों-लेखकों और आलोचकों को त्रिशंकुओं का साहित्यकार कहा जा सकता है? यदि नहीं तो इस अंक नवांक-01 के संपादकीय विवेक को और सहयोगी लेखकों के प्रयास को त्रिशंकुओं के साहित्यकारों का साझा मंच भी नहीं कहा जा सकता है। अब देखना यह है कि 'आलोचना' का नवांक-01 जब त्रिशंकुओं का साझा मंच नहीं था, तो क्या था? और उसमें नामवर सिंह का संपादकीय विवेक किस रूप में व्यक्त हुआ है?

नामवर सिंह अपने ''आत्मकथ्य' में स्पष्ट करते हैं कि ''जब मैंने पहला अंक निकाला, उस

समय कुछ ऐसी स्थिति थी कि उस अंक का स्थायी महत्त्व है... 'आलोचना' को पहले अंक से ही मैंने नया स्वरूप देने की कोशिश की। क्योंकि पहले उसका इतिहास एक साहित्यिक पत्रिका का था। जब चौहानजी निकालते थे तब भी वह साहित्यिक ही थी। वाजपेयी जी ने उसको वि. वि. की पत्रिका बना दिया था। चौहान जी ने भी हिंदी साहित्य पर केंद्रित जो अंक निकाले, उन्हें देखें, उनके ज़्यादातर लेखक अध्यापक थे।"[20] इसलिए नामवर जी ने "योजना बनाई कि 'आलोचना' के हर अंक में एक संवाद रहेगा। ज्वलंत समस्याओं पर विभिन्न लोगों के विचार होंगे क्यों कि मैं मानता हूँ कि आलोचना विशुद्ध साहित्यिक नहीं है, अधिक व्यापक है। मुक्तिबोध इसी को 'सभ्यता समीक्षा' कहते थे।"[21] हिंदी आलोचना के स्वरूप को समृद्धतर करने के लिए 'सभ्यता समीक्षा' के व्यापक आधार से जोड़ने का का काम किया। इसीलिए उन्होंने अपने संपादन में जो पहला अंक निकाला, उसमें 'चुनाव के बाद का भारत' शीर्षक से परिसंवाद आयोजित किया।

नामवर सिंह ने "इस पर भी ध्यान दिया कि 'आलोचना' को केवल "हिंदी तक" सीमित न रखा जाए, बल्कि दूसरी भारतीय भाषाओं में जो कुछ लिखा जा रहा है उसके बारे में भी सामग्री हो। बल्कि भारत के बाहर जो साहित्य है, जो साहित्यिक गतिविधियाँ हैं, वे भी हमारी परिधि में हों। इस दृष्टि से मैंने पहले अंक में निर्मल वर्मा से, जो उन दिनों चेकोस्लोवाकिया में थे। एक लेख मँगाया कि वहाँ के बुद्धिजीवी क्या सोचते हैं"[22] यह लेख इस अंक के 'विश्व संदर्भ' स्तंभ में 'परंपरा, परायापन और प्रतिबद्धता' शीर्षक से प्रकाशित है। इसी अंक से 'आलोचना' अपने प्रकाशन की पूर्व परंपरा को तोड़ती हुई दिखायी पड़ती है, इसी अंक से नामवर सिंह ने 'आलोचना' में कविता का प्रकाशन शुरू किया। इस अंक में 'धूमिल' (बीस साल बाद), 'केदारनाथ सिंह' (चुनाव की पूर्वसंध्या पर), 'भारत भूषण अग्रवाल' (अन्वेषण) की कविता प्रकाशित हैं। इस अंक में 'पुस्तक समीक्षा' को 'मूल्यांकन' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। स्पष्टतः कहा जा सकता है कि नामवर सिंह के अपने संपादकीय विवेक के चलते ही 'आलोचना' को एक नया कलेवर मिला।

यह देखना आवश्यक होगा कि नामवर सिंह ने अपने संपादन में 'आलोचना' के रूप विधान में क्या नया परिवर्तन किया और इसी से उनके संपादकीय विवेक के कुछ पक्षों का महत्त्व प्रकट होता जाएगा। ज्ञातव्य है कि नामवर सिंह के संपादन से पूर्व 'आलोचना' में 'परिसंवाद' आयोजित करने की कोई परंपरा नहीं थी। नामवर सिंह के संपादन में ही इसकी शुरूआत हुई। नामवर सिंह के संपादकीय विवेक का यह सबसे सबल पक्ष है। शिवदान सिंह चौहान के संपादन में पूर्णांक-30 अप्रैल-जून 1964 वाले अंक में 'विश्वविद्यालय और समकालीन साहित्य' शीर्षक से तीन लेख 'प्रस्तुत प्रश्न' स्तंभ में प्रकाशित हुए थे, जिसे मधुरेश जी नामवर सिंह के संपादन में 'विश्वविद्यालय और साहित्य-शिक्षा' पर आयोजित परिसंवाद के समतुल्य रखते हैं[23] जबकि ये तीनों लेख ज्वलंत समस्या का स्पष्ट बोध कराते हैं, किंतु उन्हें परिसंवाद की प्रकृति के अनुरूप नहीं रखा जा सकता है। इस प्रकार नामवर सिंह का यह संपादकीय विवेक ही था जिसने 'आलोचना' पत्रिका को 'शुद्ध साहित्य कोटि' की पत्रिका के घेरे से निकालकर उसे 'सांस्कृतिक कोटि' की पत्रिका के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। उन्होंने जो भी परिसंवाद आयोजित किए-जैसे 'चौथे आम चुनाव के बाद का भारत', 'आलोचना की भाषा', 'कविता और राजनीति', 'युवा लेखन पर बहस', विश्वविद्यालय और साहित्य-शिक्षा' आदि विषय का मूल मंतव्य ही 'सभ्यता समीक्षा' के निहितार्थ को स्पष्ट करना था। इसके अतिरिक्त, उन्होंने विशेषांक भी निकाले तो उनका संदर्भ भी सांस्कृतिक एवं 'सभ्यता समीक्षा' युक्त ही था। उदाहरण के लिए हिंदी नवजागरण की समस्या के आलोक में भारतेंदु हरिश्चंद्र और मैथिलीशरण गुप्त पर संयुक्त रूप से निकाला गया अंक (नवांक-79)। इस अंक के प्रकाशन के पीछे के मंतव्य को नामवर सिंह इन शब्दों में व्यक्त करते हैं"उन्नीसवीं सदी के जिस नवजागरण की तस्वीर पेश की जा रही थी वह दरअसल हिंदू नवजागरण था। यह बात राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की जन्मशती के संदर्भ में अनेक विद्वानों द्वारा दोहराई गई। यह बात मुझे बड़ी विचित्र लगी कि इतने वर्षों बाद आज इस माहौल में लेखकों का खासा समुदाय उन्नीसवीं

सदी के नवजागरण को हिंदू नवजागरण के रूप में स्थापित कर रहा है और यह दिखाने की कोशिश कर रहा है कि प्राचीन हिंदू या वैदिक भारत के पुनरुत्थान के द्वारा ही हम नए युग में प्रवेश कर सकते हैं।"[24] स्पष्ट है कि उनके द्वारा संपादित इस अंक की योजना के पीछे की मूल चिंता मात्र साहित्यिक नहीं रही, बल्कि उसका एक सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य रहा है। इसी तरह से उन्होंने 'नागार्जुन' और 'त्रिलोचन' पर जो विशेषांक संपादित किया, उसका संदर्भ भी व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों वाला है। नामवर सिंह नागार्जुन और त्रिलोचन के माध्यम से उन परंपराओं का प्रत्यभिज्ञान कराना चाहते थे, जो अपने समय की प्रभुत्त्वशाली परंपरा के वर्चस्व के कारण उभर कर नहीं आ सके। इस दूसरी परंपरा के प्रश्न जो प्रधान प्रवृत्तियों के कारण उभर न सकी, उन अनेक प्रश्नों को स्पष्टतः स्वर देने का वैचारिक एवं सांस्कृतिक संघर्ष है। नामवर सिंह 'आलोचना' का संपादन करते हुए कई ऐसे लेख लिखे हैं, जिनका प्रकाशन या तो संपादकीय वक्तव्य के रूप में हुआ है या स्वतंत्र रूप से लेख के रूप में। उदाहरण के लिएआचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पर केंद्रित अंक और उसमें (नवांक-49-50) 'दूसरी परंपरा की खोज' शीर्षक निबंध, नवांक 56-57 के संपादकीय वक्तव्य 'कविता की ज़मीन और ज़मीन की कविता' और नवांक-82 का संपादकीय 'एक नया काव्यशास्त्र त्रिलोचन के लिए', नवांक-83 का संपादकीय 'कविता की दूसरी परंपरा' आदि में इसी दूसरी परंपरा के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों से वह टकराते हैं। स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि यह नामवर सिंह का संपादकीय विवेक ही है कि 'आलोचना' पत्रिका का संपादन करते हुए उसे विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका की कोटि से निकालकर उसे व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक प्रश्नों को जोड़ते हैं, हिंदी आलोचना के स्वरूप को भी व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य से जोड़कर उसके स्वरूप का अर्थ-विस्तार करते हैं। इसके लिए उन्होंने 'आलोचना' को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माध्यम के रूप में विकसित किया और उसे अपनी संपादन-कला के माध्यम से हिंदी आलोचना के क्षेत्र में उसकी ऐतिहासिक महत्ता को स्थापित कर दिया।

नामवर सिंह के संपादकीय विवेक की महत्ता का पता तब लगता है जब हम देखते हैं कि 'आलोचना' पत्रिका के माध्यम से उन्होंने हिंदी आलोचना में 'साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन' को प्रस्तावित करने का माध्यम बनाया। उनका कथन है कि " 'आलोचना' में जिस दूसरी प्रवृत्ति का प्रारंभ मैंने किया, वह प्रवृत्ति है 'साहित्य के समाजशास्त्र' की। यों तो साहित्य और समाज के रिश्ते पर बहुत पहले से विचार होता आ रहा था, लेकिन बगैर यह जाने कि इसका एक शास्त्र भी होता है। साहित्यशास्त्र है तो समाजशास्त्र भी है। समाजशास्त्र के लोग इस रिश्ते को कैसे देखते हैं? इसकी पद्धतियाँ क्या हैं? कैसे विकसित हुई हैं? इन सब प्रश्नों को 'आलोचना' के मंच से सामने लाने का प्रयास किया।... यह दिखाने के लिए कि साहित्य के समाजशास्त्र की अनेक विचारधाराएँ होती हैं, मैने गोल्डमान के लेख छापे उन पर अंक निकाला। अंग्रेजी के कई लेखों का अनुवाद"[25] आदि को प्रकाशित किया। उदाहरण के लिएनवांक-25 में 'साहित्य के समाजशास्त्र' पर तीन लेखकों-माल्कम ब्रेडबरी, रिचर्ड हागर्ट, और रेमंड विलियम्स, के लेखों के अनुवाद प्रकाशित हैं। नवांक-20 का संपादकीय लुसिएँ गोल्डमान पर केंद्रित है। इसी अंक में गोल्डमान के एक लेख का अनुवाद भी प्रकाशित किया गया है। इस विषय पर केंद्रित पूरनचंद्र जोशी के कई लेख 'आलोचना' में प्रकाशित हैं। रेमंड विलियम्स के कुछ लेखों के अनुवाद और उन पर लेख आदि का प्रकाशन किया गया है। 'साहित्य के समाजशास्त्रीय चिंतन' जैसी नवीन प्रवृत्तियों को हिंदी आलोचना में प्रस्तावित करने का श्रेय मैनेजर पांडेय, नामवर सिंह को देते हैं, और अपनी पुस्तक 'साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका' को नामवर सिंह को समर्पित करते हुए लिखते हैं। "डॉ0 नामवर सिंह को सादर जिनके प्रयत्न से साहित्य का समाजशास्त्र हिंदी में आया।"[26] नामवर सिंह के इस विवेक की व्यावहारिक परिणति 'आलोचना' पत्रिका के संपादन में स्पष्टतः देखी जा सकती है। इस तथ्य की पुष्टि मैनेजर पांडेय इन पंक्तियों के माध्यम से करते हैं"साहित्य के समाजशास्त्र को हिंदी में ले आने, उसकी विभिन्न दृष्टियों और आलोचनात्मक उपलब्धियों से हिंदी पाठकों को परिचित कराने

और उस पर बहस चलाने का काम 'आलोचना' पत्रिका के माध्यम से डॉ0 नामवर सिंह ने किया है।"[27] यहाँ नामवर सिंह के संपादकीय विवेक की दूरदर्शिता का उद्‌घाटन तो किया ही गया है इसके साथ-साथ 'आलोचना' पत्रिका का हिंदी आलोचना के विकास में योगदान के एक पक्ष को भी स्पष्ट कर दिया गया है।

नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' का उल्लेखनीय एवं महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि वह विश्व साहित्य की नवीन से नवीन प्रवृत्तियों से हिंदी पाठकों को परिचित कराने का कार्य करती है। नामवर सिंह का इस संदर्भ में मत है कि" 'आलोचना' के अंतर्गत हम यह भी चाहते थे कि हिंदी पाठकों को विश्व साहित्य की नई से नई प्रवृत्तियों के बारे में जानकारी होनी चाहिए।"[28] 'आलोचना' का संपादन करते हुए नामवर जी ने अपने समय की नवीन से नवीन साहित्यिक-सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करने का काम किया। उदाहरण के लिए'शैली विज्ञान' संबंधी अध्ययन की नई प्रवृत्ति पर 'आलोचना' में कई लेख प्रकाशित हैं। रवींद्रनाथ श्रीवास्तव और विद्यानिवास मिश्र की इस विषय पर लिखे गए निबंध और शोधपूर्ण लेख विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नामवर सिंह का मानना है कि "उस समय शैली विज्ञान की नई चीज चली थी जिसके अंतर्गत किसी साहित्यिक कृति का अध्ययन हम उसकी भाषा का विश्लेषण करते हुए करते हैं। इस विषय पर हमने रवींद्रनाथ श्रीवास्तव के कई लेख 'आलोचना' में छापे। बाद में शैली विज्ञान पर उनकी पुस्तक भी आई। बाद में और भी लोगों ने लिखा लेकिन शुरूआत करने का श्रेय 'आलोचना' को ही जाता है।"[29]

इसके अतिरिक्त, आजकल हिंदी आलोचना में जिस प्रकार से संरचनावाद, उत्तर आधुनिकतावादी साहित्य-चिंतन से टकरा रही है उसकी पहली अभिव्यक्ति 'आलोचना' पत्रिका के पृष्ठों पर ही देखी जा सकती है। इस संदर्भ में नामवर सिंह का विचार है कि"आज-कल उत्तर आधुनिकता का बहुत हल्ला है लेकिन आलोचना में बहुत पहले विच्छेदनवाद जिसको अंग्रेज़ी में डिकांस्ट्रक्शन कहते हैं पर मैंने कई लेख छापे।"[30] यह बात उन्होंने अपने 'आत्मकथ्य' में ही नहीं, बल्कि बहुत पहले

'आलोचना' के उस अंक के संपादकीय में भी लिख चुके थे। इस संपादकीय में उन्होंने पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित कराने का कार्य भी किया

"डॉ0 राजनाथ के लेख 'पाठकवादी समीक्षा की समीक्षा' की ओर अपने पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करते हुए हम कहना चाहते हैं कि पाश्चात्य साहित्य में आजकल 'रीडर-रिस्पांस क्रिटिसिज़्म पर गरमागरम बहस चल रही है और इस विषय पर हिंदी में यह पहला लेख है। इससे पहले 'आलोचना' में डिकांस्ट्रक्शन' नामक अत्यंत विचारोत्तेजक और विवादास्पद आलोचना-प्रणाली पर डॉ0 राजनाथ का लेख प्रकाशित हो चुका है और वह भी हिंदी में अपने विषय का पहला और अभी तक संभवतः पहला लेख है।"[31] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि नामवर जी को अपने गंभीर संपादक होने का भी एहसास था और संपादकीय दायित्व का भी। इसी संदर्भ में उल्लेखनीय है नवांक-68 (जनवरी-मार्च 1984 ई.) में गुजराती भाषा के कवि और लेखक 'सुरेश ह. जोशी के लेख का हिंदी अनुवाद 'आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता' शीर्षक से प्रकाशित है। नामवर सिंह इस लेख का उल्लेख अपने आत्मकथ्य में भी कर चुके हैं। इसी प्रकार से 'सौंदर्यशास्त्र' संबंधी अध्ययन की नवीन प्रवृत्तियों एवं मान्यताओं पर प्रचुर मात्रा में सामग्री प्रकाशित करने का कार्य करते हैं। इस प्रकार नामवर जी ने 'आलोचना' के माध्यम से ही हिंदी आलोचना में नवीन प्रवृत्तियों को प्रकाश में लाने का कार्य किया। कहा जा सकता है कि यह नामवर सिंह के संपादकीय विवेक के कारण ही संभव हो पाया।

नामवर जी ने अपनी 'आत्म कथ्य' में 'आलोचना' पत्रिका में प्रस्तुत की गई नवीन प्रवृत्तियों का ज़िक्र तो करते हैं, किंतु अपने संपादन के माध्यम से एक और महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं, जिसको वह अपने आत्मकथ्य में उल्लेखनीय नहीं समझते हैं, वह है 'साहित्यिक समस्याओं और बहसों पर पूर्व प्रकाशित सामग्री का पुनरप्रकाशन।' उदाहरण के लिएनवांक-84 (जनवरी-मार्च 1988 ई.) में मराठी के प्रसिद्ध चिंतक और इतिहासाचार्य विश्वनाथ काशीनाथ राजवाड़े का 'कादंबरी' (1902

ई.) शीर्षक विस्तृत निबंध का अनुवाद जो 'उपन्यास' शीर्षक से प्रकाशित किया गया है। इस लेख के संबंध में स्वयं नामवर सिंह की संपादकीय टिप्पणी है कि " 'आलोचना' के लिए हमने विशेष रूप से अनुवाद कराया है। यह निबंध आज से छियासी वर्ष पहले 1902 में प्रकाशित हुआ था, फिर भी आज भी कितना प्रासंगिक है। हिंदी जगत तो खैर इससे एकदम अपरिचित है ही, मराठी में भी आज इससे कम लोग ही अवगत हैं। जहाँ तक अपनी जानकारी है, व्यापक सामाजिक, ऐतिहासिक परिदृश्य में 'उपन्यास' के उदय पर किसी भारतीय भाषा में लिखित यह पहला गंभीर निबंध है।"[32] इसी संपादकीय वक्तव्य में एक टिप्पणी और भी है"हमारे विशेष अनुरोध पर मराठी के प्रबुद्ध नाटककार गोविंद देशपांडे ने राजवाड़े के व्यक्तित्त्व और उनके 'उपन्यास' शीर्षक निबंध के महत्त्व पर सारगर्भित टिप्पणी प्रस्तुत की है।"[33] यह उद्धरण ही नामवर सिंह के संपादकीय विवेक का और उनके संपादकीय दायित्व की गंभीरता का भी बोध कराता है। यह नामवर सिंह का संपादन दायित्व ही था, जिसके चलते किसी लेखक से मात्र एक टिप्पणी के लिए 'विशेष रूप से अनुरोध' करना पड़ा। नामवर सिंह द्वारा यह कार्य सिर्फ इसी टिप्पणी के लिए नहीं किया है, बल्कि 'आलोचना' में किसी विषय पर लेख आदि के प्रकाशन के लिए न जाने कितने लेखकों, कवियों, आलोचकों, और अनुवादकों से अनुरोध, आग्रह किया गया है। यहाँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय है, रघुपति सहाय फ़िराक गोरखपुरी के चौथे दशक में अंग्रेज़ी में प्रकाशित लेख का हिंदी में अनुवाद कराकर नवांक-81 में 'महान कविता क्या है? शीर्षक से प्रकाशित कराना। इसी प्रकार से वाल्टर बेंजामिन के 1930 के दशक में प्रकाशित लेख का हिंदी अनुवाद 'लेखक उत्पादक के रूप में शीर्षक से नवांक-17 में प्रकाशन। नवांक-92 में 'रस सिद्धांत' पर विशेष अंक वस्तुतः पूर्वप्रकाशित लेख का व्यवस्थित और नवीन रूप से पुनर्प्रकाशित सामग्री ही है।

नामवर सिंह के संपादकीय विवेक की महत्ता का पता तब चलता है जब उन्होंने मार्क्सवादी आलोचना की नवीन प्रवृत्तियों से पाठकों को परिचित कराने के उद्देश्य से प्रचुर सामग्री का

प्रकाशन किया। नामवर सिंह मार्क्सवादी आलोचना की नवीन बहसों को 'आलोचना' के माध्यम से प्रस्तुत करने का कार्य। उन्होंने मार्क्सवादी आलोचना के नवीन बहसों के प्रेरणास्रोत जार्ज लूकाच पर पूरा अंक ही संपादित किया। बाल्टर बेंजामिन, जेरेमी हाथर्न, हरबर्ट मारकूस, रेमंड विलियम्स आदि के लेखों का अनुवाद, इन पर अध्ययन पूर्ण लेख आदि का प्रकाशन करते हुए मार्क्सवादी कला-साहित्य चिंतन में चल रही नवीन बहसों से हिंदी पाठकों को परिचित कराने का कार्य किया। हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना को नवीन दिशा देने का ही उनका उद्देश्य रहा है। इसके माध्यम से उन्होंने हिंदी की मार्क्सवादी आलोचना को नवीन सिद्धांतों से जोड़कर ग़ैरमार्क्सवादी साहित्य-चिंतन एवं कलावादी चिंतन के विरुद्ध एक अत्यंत निर्णायक संपादक की भूमिका का निर्वहन किया। मार्क्सवादी आलोचना के विकास में उनके संपादकीय विवेक का यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण और ऐतिहासिक योगदान है। इस संदर्भ में परमानंद श्रीवास्तव का अग्रलिखित वक्तव्य उपर्युक्त मत को ही पुष्ट करता है। "हिंदी आलोचना के पाठकों के लिए ऐसी महत्त्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध कराने के पीछे महज साहित्य-शिक्षा के स्तरोन्नयन की चिंता न थी, मार्क्सवादी सौंदर्यशास्त्र की समस्याओं से गहरे स्तर पर उलझने-टकराने की कोशिश भी थी।"[34]

यह नामवर सिंह का संपादकीय विवेक ही है जिसके कारण उन्होंने विशुद्ध आलोचना की पत्रिका में कविताओं का प्रकाशन किया। उनसे पूर्व 'आलोचना' के संपादकों ने उसे केवल आलोचनात्मक लेखन की पत्रिका के रूप में ही निकाला। जबकि 'आलोचना' को रचनात्मकता से जोड़ने का पहला काम नामवर सिंह ने ही किया। ध्यातव्य है कि यह रचनात्मकता भी केवल 'काव्य रचनाओं' तक सीमित है। आलोचनात्मक लेखन के बीच रचनात्मक लेखन की प्रस्तुति नामवर सिंह की कुशल संपादन-योजना का ही प्रमाण है। 'आलोचना' में प्रकाशित काव्य-रचनाएँ हिंदी कविता की युगीन प्रवृत्तियों की सूचना तो देती ही हैं, साथ ही साथ वे स्वयं नवीन युग-प्रवर्तनकारी भी हैं। उदाहरण के लिए धूमिल की लंबी कविता 'पटकथा' जलसाघर (श्रीकांत वर्मा) 'गिरीश की मृत्यु'

(रघुवीर सहाय) 'बाघ', 'ज़मीन (केदारनाथ सिंह), इस व्यवस्था में (लीलाधर जगूड़ी) पिता के लिए (मंगलेश डबराल) बलदेव शटिक (लीलाधर जगूड़ी) हसरूद्दीन (ऋतुराज), मुसलमान (देवी प्रसाद मिश्र), दीवार के इधर-उधर (सुल्तान अहमद) 'नगई महरा', चित्रा जाम्बोरकर (त्रिलोचन) इसी प्रकार से रामविलास शर्मा, कुँवर नारायण, केदारनाथ अग्रवाल, बोधिसत्व, नागार्जुन, विश्वनाथ त्रिपाठी, पंकज सिंह, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मलयज आदि रचनाकारों की काव्य-रचनाएँ भी 'आलोचना' के कई अंकों में प्रकाशित है। इसी के साथ अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं का काव्यानुवाद भी 'आलोचना' में प्रमुखता से प्रकाशित है। जिनमें 'पाब्लो नेरुदा', 'बर्तोल्त ब्रेख्त', 'फैदेरीको गार्सिया लोर्का', 'यान्निस रित्सोस', 'अलेक्सांद्र त्वारदोवस्की', 'बोलशोयिंका', महमूद दरवेश आदि की काव्य-रचनाओं के अनुवाद प्रकाशित हैं, वहीं 'पाश', 'नारायण सुर्वे', नरसिंह रेड्डी, शमसुर्रहमान आदि अन्य भारतीय और विदेशी भाषाओं के कवियों का हिंदी अनुवाद प्रकाशित किया गया है। यहाँ प्रश्न किया जा सकता है कि साहित्य की ढेर सारी विधाओं में से केवल 'कविताओं के प्रकाशन क्या बोध कराता है? वस्तुस्थिति यह है कि 'आलोचना' पत्रिका में नामवर सिंह द्वारा कविताओं के प्रकाशन के माध्यम से इस तथ्य को और बल मिला है कि हिंदी आलोचना मुख्यतः कविता केंद्रित है। दूसरी तरफ, इसके माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है यदि वह कविता केंद्रित है, तो उस रचनात्मकता में होने वाले बदलाव को लक्षित किया जाए। इसके साथ-साथ हिंदी कविता को नवीन काव्य-प्रतिभाओं की प्रतिनिधि रचनाएँ छापकर उनके महत्त्व को प्रदर्शित किया जा सके।

इसी प्रकार समीक्षाओं को जिस प्रकार प्रकाशित किया गया है उससे नामवर सिंह के संपादकीय विवेक का ज्ञान होता है। नामवर सिंह ने अपने संपादन में उन्हीं पुस्तक-समीक्षाओं को प्रकाशित किया है जो मात्र 'पुस्तक परिचय' के रूप में हमारे सम्मुख नहीं प्रस्तुत होती हैं, बल्कि वैचारिक संघर्षों और साहित्यिक बहसों को गति प्रदान करती हैं। पुस्तक समीक्षा के संदर्भ में नामवर सिंह का एक अनूठा प्रयोग 'आलोचना' में देखा जा सकता है। नामवर सिंह के संपादन में कई अंकों

में ऐसा हुआ है कि एक ही पुस्तक की तीन-तीन या दो-दो समीक्षाएँ एक साथ प्रकाशित करते हैं। जैसे वह एक ही समीक्षक की समीक्षा से संतुष्ट न हों और समीक्ष्य कृति का कई दृष्टियों से मूल्यांकन चाहते हों। दूसरी तरफ उन्होंने यह भी प्रयोग किया है कि एक ही समीक्षक द्वारा एक ही अंक में चार-चार पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित करते हैं। 'निराला की साहित्य 'साधना' पर नवांक-09 में तीन लेखकों की समीक्षा प्रकाशित है, 'कसप' उपन्यास की तीन समीक्षाएँ नवांक-64-65 में प्रकाशित हैं। दूसरे पक्ष का उदाहरणनवांक-10 में विष्णुचंद्र शर्मा द्वारा चार पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित हैं। नवांक-11 में विष्णु खरे की चार पुस्तक समीक्षाएँ, नवांक-16 में विजयमोहन सिंह द्वारा तीन कृतियों की समीक्षा प्रकाशित हैं, तथा मधुरेश द्वारा की गई तीन पुस्तकों की समीक्षाओं को नवांक 36 में प्रकाशित किया गया है। स्पष्ट है कि इस तरह के कार्य संपादकीय विवेक की नूतन प्रयोग का परिचय तो है ही साथ समीक्षा-कर्म को मात्र 'पुस्तक परिचय' के संकुचित अर्थ के घेरे से निकाल कर उसका स्वरूप 'मूल्यांकन' के व्यापक अर्थ और वैचारिक संघर्ष के निहितार्थ को व्यंजित करना है।

किसी भी संपादक की संपादन कुशलता का पता उसके द्वारा लेखकों की त्रुटियों को सुधारते हुए उनके कार्यों का समूचे परिप्रेक्ष्य का उद्घाटन', नवीन प्रतिभाओं और उनके कार्यों को व्यापक पाठक समूह के बीच प्रस्तुत करना, युवा और नवीन मस्तिष्क को प्रोत्साहित साहित्य की भावी दिशा और दशा में युगांतरकारी कार्य किया जा सके, इस संदर्भ में यहाँ उल्लेखनीय है कि नामवर सिंह ने 'आलोचना' पत्रिका का संपादन करते हुए कई युवा प्रतिभाओं की आलोचनात्मक और रचनात्मक प्रतिभा को पहचाना, उन्हें प्रोत्साहित किया।

'आलोचना' पत्रिका के माध्यम से जिन युवा प्रतिभाओं को उन्होंने प्रोत्साहित किया जो आज की हिंदी आलोचना के गगन पर अपने प्रकाश से आलोकित हैं उनमें से कुछ प्रमुख नाम इस प्रकार देखे जा सकते हैं: 'वीरभरत तलवार', पुरुषोत्तम अग्रवाल, प्रदीप सक्सेना, रामबक्ष, मलयज,

शंभुनाथ आदि। इसी प्रकार वे अपनी समवयस्क प्रतिभाओं को लगातार लिखते रहने के लिए उत्साहित करते रहे और उनके कार्यों को 'आलोचना' पत्रिका में निरंतर प्रकाशित करते रहे। जिनमें रमेशकुंतल मेघ, मैनेजर पांडेय, शिवकुमार मिश्र, परमानंद श्रीवास्तव, विजयमोहन सिंह, नंदकिशोर नवल, पूरनचंद्र जोशी, राजेंद्र यादव, बच्चन सिंह, राधावल्लभ त्रिपाठी, वागीश शुक्ल, नेमिचंद्र जैन, गोपालराय, नरनारायणराय, खगेंद्र ठाकुर, रामचंद्र तिवारी, मधुरेश, विष्णुचंद्र शर्मा, प्रयाग शुक्ल, 'रवींद्रनाथ श्रीवास्तव', 'रमेशचंद्र शाह', अशोक वाजपेयी', 'विष्णु खरे', विश्वनाथ त्रिपाठी आदि कुछ महत्त्वपूर्ण नाम हैं।

नामवर सिंह के संपादकीय विवेक पर अपने आरंभिक विचार प्रस्तुत करते हुए परमानंद श्रीवास्तव लिखते हैं कि "आलोचना का संपादन भी नामवर सिंह के वैचारिक संघर्ष का ज़रूरी हिस्सा रहा है। नामवर सिंह के आलोचक-व्यक्तित्त्व में बहुत कुछ ऐसा है, जिस पर विचार करते हुए उनके संपादक व्यक्तित्त्व को याद करना ज़रूरी हो जाएगा।"[35] अपनी इसी थीसिस को आगे विस्तार देते हुए स्पष्ट करते हैं कि"यह मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि नामवर जी के लिए 'आलोचना' का संपादन और उनका अपना आलोचनात्मक संघर्ष बहुत कुछ अभिन्न रहा है।"[36] यदि इस थीसिस के आधार पर जब नामवर सिंह का संपादकीय विवेक संबंधी अध्ययन करते हैं तो हमें उनकी बातों को बहुत हद तक स्वीकार करना पड़ता है। इसके कई कारण हैं, एक तो परमानंद श्रीवास्तव स्वयं ही 'आलोचना' पत्रिका के 'सह-संपादक' रहे हैं यानी 'आलोचना' के संपादन से जुड़े रहने के कारण नामवर सिंह के सहयोगी रहे हैं। दूसरी तरफ जब नामवर जी के आत्मवक्तव्य में व्यक्त विचारों को और 'आलोचना' पत्रिका के प्रकाशन की विकास-यात्रा को पारस्परिक संदर्भों में रखकर देखते हैं तो श्रीवास्तव जी की उपर्युक्त थीसिस में बहुत हद तक सुसंगति दिखाई पड़ती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि" 'आलोचना' को सार्थक वाद-विवाद संवाद का आदर्श बनाने की सारी कल्पना नामवर सिंह के अपने आलोचनात्मक संघर्ष से अभिन्न

है। नामवर सिंह के संपादन में 'आलोचना' ने गहरे अर्थों में समकालीन सार्थकता प्राप्त की। मूल्यवान विचार संदर्भों की निरंतर उपस्थिति के साथ निकट के रचना परिदृश्य में सीधा हस्तक्षेप।"[37] इस परिप्रेक्ष्य में यदि 'आलोचना' के अंकों को देखते हैं उससे नामवर सिंह की आलोचनात्मक प्रखरता और संपादकीय क्षमता की संयुक्तता का बोध होता है। यही कारण है कि"नामवर सिंह के संपादन प्रकाशन में 'आलोचना' के अंक अक्सर विवादास्पद भी रहे हैं जैसे उनका अपना आलोचक-व्यक्तित्व भी रहा है। विवादास्पद पर महत्त्वपूर्ण।"[38] नामवर सिंह द्वारा संपादित 'आलोचना' के आरंभिक अंकों को ही देखने से यह पता लग जाता है कि उनका संपादक-व्यक्तित्व उनके आलोचक-व्यक्तित्व से कितना आच्छादित है। नामवर सिंह जब 'आलोचना' का संपादन-दायित्व अपने हाथों में ग्रहण करते हैं वह समय नेहरू युग का अंत, शीत युद्ध का परिवेश, एक ऐसी युवा पीढ़ी के उभार का युग था, जिसने स्वतंत्र भारत में अपनी आँखें खोली थीं और जिसकी एक विचित्र स्थिति थी। वह न स्वतंत्र भारत की स्वप्नदर्शी था, और न उसका कोई मोहभंग था। वह युवा अपने समकालीन भारत के यथार्थ को देखकर बौखलाया हुआ था; गुस्से में था हमारा क्या होगा? और यह युवा पीढ़ी, जो सठोत्तरी पीढ़ी के नाम से जानी गई, उनके आक्रोश आदि को गलत ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश की जा रही थी, नामवर सिंह ने अपने समय की इस पीढ़ी के मन की बनावट को परखते हुए इस 'युवा लेखन' के स्वरूप का उद्घाटन के लिए 'आलोचना' पत्रिका को अत्यंत महत्त्वपूर्ण माध्यम के रूप में विकसित किया। उनके संपादन में 'आलोचना' के पहले अंक में 'धूमिल' की कविता प्रकाशित है। इस अंक का संपादकीय भी तत्कालीन रचनाशीलता यानी युवा पीढ़ी की रचना से संवाद के संदर्भ में ही उल्लेखनीय है। 'आलोचना' के आरंभिक अंकों में युवा लेखन को केंद्र में रखकर कई आलेख, निबंध आदि का प्रकाशन किया गया है। 'आलोचना' का नवांक-04 (जनवरी-मार्च, 1968 ई.) में एक परिसंवाद 'युवा लेखन पर बहस' शीर्षक से आयोजित किया गया है। " 'आलोचना' के युवा लेखन केंद्रित

अंक के जरिए और उस समय के अन्य अंकों के जरिए भी नामवर सिंह ने युवा लेखन को साहित्यिक परिदृश्य के केंद्र में लाने की पहल की। यह वही समय था जब एक पीढ़ी के रघुवीर सहाय और दूसरी पीढ़ी के धूमिल की कविताएं व्यवस्था के प्रति एक ही तरह का असंतोष और बदलाव के लिए छटपटाहट प्रकट करती थीं।"[39] और नामवर सिंह का विचार है कि "धर्मवीर भारती ने, कमलेश्वर ने इसी पीढ़ी पर हमला बोल दिया था। 'धर्मयुग' में 'ऐय्याश प्रेतों का विद्रोह' लेख छपा था। इस उभरती हुई युवा पीढ़ी में कविता में धूमिल, राजकमल जैसे लोग थे तो कहानी में ज्ञानरंजन, काशी, और दूधनाथ थे। नई कविता के रुमानी भावबोध में रचे-बसे लोग इस पीढ़ी का विरोध कर रहे थे तो मैंने 'आलोचना' का अंक युवा कविता (लेखन) पर एक बहस निकाला।"[40] इसी कारण से परमानंद श्रीवास्तव स्पष्ट शब्दों में कहते हैं कि"आलोचना-संपादक के रूप में नामवर सिंह की योजना के अंतर्गत ही 'युवा-लेखन' को उपयुक्त नाम देने के आरंभिक प्रयत्न संभव हुए।"[41] इस प्रकार स्पष्ट है कि नामवर सिंह ने जिस प्रकार से युवालेखन पर अपनी आलोचनात्मक प्रतिभा को उसके महत्त्व का उद्घाटन किया, उसी प्रतिभा के बल पर कुशल संपादन-कला का परिचय देते हुए युवा पीढ़ी पर सकारात्मक ढंग से विचार करने का मार्ग प्रशस्त किया। इस पीढ़ी की अन्यतम देन 'धूमिल' की असामयिक मृत्यु पर उनकी श्रद्धांजलि में पूरे एक अंक का संपादन किया।

नामवर सिंह के संपादन में जब 'आलोचना' आई तब पूरा परिदृश्य चुनावी राजनीति का था, राजनीति का अतिक्रमण जीवन में महसूस किया जाने लगा था, लेकिन साहित्यिक आलोचना इस संदर्भों से कटी हुई थी। इसीलिए नामवर सिंह अपने आलोचनात्मक मेधा का प्रयोग करते हुए उसे सामाजिक-राजनीतिक सवालों से जोड़ने का कार्य 'आलोचना' के नवांक-1 में 'चुनाव के बाद का भारत' शीर्षक परिसंवाद का आयोजन करके किया। इसी प्रकार से 'कविता और राजनीति' शीर्षक से एक परिसंवाद स्वर्गीय मुक्तिबोध की इक्यावनवीं जन्मतिथि पर आयोजित कीं, जिससे

हिंदी आलोचना का विशुद्ध साहित्यिक स्वरूप में युगांतरकारी परिवर्तन करने की सामर्थ्य युक्त अंक प्रमाणित हुई। उसे 'सभ्यता समीक्षा' का स्वरूप देने का कार्य किया। और मुक्तिबोध पर 'आलोचना' पत्रिका का विशेषांक निकाल कर उन्हें नई कविता के केंद्र में स्थापित किया।

इसी तरह नामवर जी ने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की षष्ठिपूर्ति पर 'आलोचना की भाषा' शीर्षक से एक परिसंवाद का आयोजन किया। जिसके द्वारा आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को हिंदी आलोचना में स्थापित करने का प्रयास किया। सवाल यह उठता है कि नामवर सिंह ने यह सब क्यों किया? नामवर सिंह का मानना है कि "आलोचक का एक मुख्य उद्देश्य यह भी है, जैसा कि इलियट ने कहा है कि हर आलोचक इतिहास का या अपनी परंपरा की पुनः व्यवस्था करता है। यों कहें कि आलोचना' का एक कैनन होता है यानी कि आपकी दृष्टि में जो सबसे महत्त्वपूर्ण है सार्थक है वह क्या है? आपकी सूची में कौन लोग हैं? आलोचक का दायित्व है साहित्य में प्रचलित कैनन पर विचार करना और जरूरत है तो उस कैनन को बदल देना।"[42] स्पष्ट है कि नामवर सिंह यहाँ आलोचक के गुणों की चर्चा कर रहे हैं किंतु जब वह आगे की पंक्तियों में यह कहते हैं कि"अज्ञेय और नई कविता की इतनी धूम थी कि मुक्तिबोध जैसा महत्त्वपूर्ण कवि उपेक्षित था।... अब मैंने मुक्तिबोध पर विशेषांक निकाला। मुक्तिबोध पर किताब तो मैंने अलग से लिखी ही लेकिन विशेषांक पहले निकाला था... इस तरह मैंने कविता में कैनन को बदलने की कोशिश की।"[43] इसी प्रकार "हजारीप्रसाद द्विवेदी पर विशेषांक निकाल कर मैंने आलोचना के कैनन में परिवर्तन किया था।"[44] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उनका आलोचक और संपादक रूप किस तरह से एक दूसरे से संपृक्त है। नामवर सिंह 'आलोचना' का संपादन करते हुए हिंदी साहित्य में युगांतरकारी परिवर्तन करने का कार्य करते हैं, और यह कार्य प्रखर आलोचनात्मक विवेक से सम्पन्न संपादक के हाथों ही संभव हो सकता था नामवर सिंह का संपादकीय विवेक की ही परिणति है कि मुक्तिबोध, धूमिल और आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की प्रतिभाओं को हिंदी जगत अत्यंत

सहजता से स्वीकार कर सकाहिंदी साहित्य के इतिहास में उनके महत्त्व का उद्घाटन हो सका। ध्यातव्य है कि नामवर सिंह ने यह सभी कार्य 'आलोचना' पत्रिका के संपादन के मात्र चार अंकों के माध्यम से किया। इन्हीं चार अंकों के माध्यम से नामवर सिंह ने अपने संपादकीय विवेक का परिचय दिया। यह अलग-अलग संपादकीय विवेक था जिसमें शिवदान सिंह चौहान ठीक एक वर्ष पूर्व इन्हीं साहित्यिक परिस्थितियों एवं परिवेश में रहते हुए भी देख नहीं सके थे, जबकि नामवर सिंह ने 'आलोचना' के संपादन के माध्यम से अपने संपादकीय विवेक का परिचय दिया। वस्तुतः नामवर सिंह द्वारा 'आलोचना' का संपादन उनके आलोचनात्मक संघर्ष का हिस्सा रहा है। इसके अन्यतम उदाहरण के रूप में उनकी 'दूसरी परंपरा की खोज' संबंधी अवधारणा को देखा जा सकता है, जो पहली बार 'आलोचना' पत्रिका में ही प्रस्तुत की गई है।

इसी प्रकार 'हिंदी नवजागरण संबंधी अध्ययन पर डॉ0 रामविलास शर्मा से उनकी असहमति को 'आलोचना' के भारतेंदु और मैथिलीशरण गुप्त संयुक्तांक (नवांक-79) में देखा जा सकता है। इसी तरह 'आलोचना' के नवांक-29 (अप्रैल-जून 1974 ई.) में 'आज के युग में प्रगतिशीलता' विषय पर आयोजित अंक में उग्रवामपंथी दृष्टि से उनकी असहमति भी देखी जा सकती है। इसी प्रकार प्रेमचंद जन्मशती विशेषांक (नवांक-50-51) में एक ओर कलावादी चिंतकों से तो दूसरी ओर उग्रमार्क्सवादी आलोचकों से असहमति जताते हैं, वहीं प्रेमचंद का मूल्यांकन उदारवादी 'हाँ-ना-वादी दृष्टि' से करनेवालों का प्रखर विरोध करते हुए प्रेमचंद की वास्तविक छवि को प्रस्तुत करने के लिए मार्गप्रशस्त करते हैं। यही कारण है कि नामवर सिंह के लिए किसी की जन्मशती, पुण्यतिथि, स्मृति के "मौके पर 'आलोचना' का विशेष अंक आए, यह तो ज़रूरी है पर यह भी अधिक जरूरी है कि यह अंक प्रशस्ति अंक या उत्सव अंक न बने मूल्यांकन अंक बने। एक लंबे समय के आलोचनात्मक संघर्ष के अंतर्विरोध भी सामने आए। और यह 'आलोचना' से ही नहीं रचना से भी सामने आए। और हम 'आलोचना' से ही नहीं रचना से भी इस ऐतिहासिक क्षण को

रेखांकित करें।"[45] स्पष्टतः कहा जा सकता है कि नामवर सिंह के लिए 'आलोचना' का संपादन उसे 'आलोचनात्मक विवेक की पत्रिका' के रूप में सुसंगत ढंग से समायोजित करने का प्रयास है। जिसमें उनका वैचारिक और आलोचनात्मक संघर्ष भी परिलक्षित होता है, वह संघर्ष चाहे आधुनिकतावादी-व्यक्तिवादी दृष्टि से हो, कलावादी साहित्य-दृष्टि से हो या मार्क्सवादी चिंतकों की उग्र वामपंथी दृष्टि से। वह पक्ष उनके द्वारा संपादित 'आलोचना' के अंकों में स्पष्ट लक्षित किया जा सकता है।

'आलोचना' पत्रिका की साहित्यिक पत्रिकारिता के संदर्भ में अन्यतम देन आलोचनात्मक लेखों, शोधपूर्ण आलेखों का धारावाहिक रूप से प्रकाशन में माना जाना चाहिए। यहाँ ध्यान देन की बात है, कि प्रायः पत्र-पत्रिकाएँ कहानियों उपन्यासों को ही धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया करती थीं, किंतु कदाचित यह साहित्यिक पत्रकारिता के इतिहास में पहली बार हुआ कि 'जिसमें आलोचनात्मक लेखों को क्रम से, धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया गया हो। आलोचनात्मक लेखों के 'आलोचना' पत्रिका में धारावाहिक प्रकाशन पहले होता है, जो बाद में पुस्तक रूप में प्रकाशित हुईं, यह क्रम सिर्फ एक-दो पुस्तक तक सीमित न रहकर, कई पुस्तकों को 'आलोचना' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित होते हुए देखा जा सकता है जो पहले-पहल लेख के रूप में ही 'आलोचना' में प्रकाशित हुईं।। यहाँ उन पुस्तकों और उसके लेखकों के नाम ही गिनाए जा सकते हैंनंदकिशोर नवल की पुस्तक'हिंदी आलोचना का विकास', मैनेजर पांडेयकृत 'साहित्य और इतिहास दृष्टि', पूरनचंद्र जोशी 'परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम', इंद्रनाथ मदान'आधुनिकता और हिंदी साहित्य', डॉ0 रामविलास शर्मा'महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिंदी नवजागरण', 'घर की बात' आदि पुस्तकें पहले-पहल आलोचनात्मक लेखों के रूप में ही 'आलोचना' में प्रकाशित हुई थीं। स्पष्ट है कि 'आलोचनात्मक लेखों' को श्रंखलावत तरीके से 'आलोचना' में प्रकाशित करना स्वयं हिंदी साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में अन्यतम योगदान के रूप ग्रहण किया

जाना चाहिए। यह नामवर सिंह की संपादकीय विवेक की महत्ता को ही उद्घाटित करता है।

'आलोचना' पत्रिका में संपादन सहयोगी के रूप में परमानंद श्रीवास्तव के क्या अनुभव रहे हैं इसके माध्यम से भी नामवर सिंह के संपादकीय विवेक का अनुमान किया जा सकता है। "यह मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि... एक सामान्य अंक से वे कभी संतुष्ट न होते थे। सामान्य अंक में भी क्या महत्त्वपूर्ण सामग्री जा रही है, जा सकती है, वे इसके प्रति अधिक सचेत थे। जो महत्त्वपूर्ण योजनाएँ वे बनाते, जिन विषयों का वे चुनाव करते, जिनके लिए सामग्री जुटाने की ज़िम्मेदारी सौंपते, वह हमेशा उत्तेजित करनेवाला अनुभव सिद्ध होता। ऐसी महत्त्वाकांक्षा के अनुरूप हर अंक के लिए यथेष्ठ सामग्री जुटा पाना आसान न था। चुनौती हर बार इस रूप में कि हम बहुत नया और महत्त्वपूर्ण दे सकें।"[46] नामवर सिंह के लिए 'आलोचना' के 'अंक' का क्या मतलब था इसे इस वक्तव्य के माध्यम से भी बेहतर जान सकते हैं"उनकी अपनी कल्पना के अनुसार किसी अंक की सार्थकता तभी मानी जानी चाहिए जब उसमें कुछ सर्वथा नया, नए सवाल उठानेवाला, नई उत्तेजना पैदा करनेवाला रचना संदर्भ मौजूद हो। नवीनता के लिए यह आग्रह नवीनता के प्रति कोरी आसक्ति से भिन्न, बौद्धिक सजगता या आलोचनात्मक चौकन्नापन लिए हुए था।"[47]

परमानंद श्रीवास्तव अपने लेख में नामवर सिंह की संपादन-कला पर प्रमुखता से लिखते हुए भी इस तथ्य पर उचित ढंग से विचार नहीं करते हैं कि आख़िर क्या कारण है कि 'आलोचना' पत्रिका के अधिकांश अंकों में संपादकीय वक्तव्य या टिप्पणी तक प्रकाशित नहीं है यानी 'आलोचना' के अधिकांश अंक बिना किसी संपादकीय के प्रकाशित हुए हैं। यह प्रवृत्ति भी हालांकि बाद की आलोचना में अधिक दिखाई पड़ती है। आरंभिक 'आलोचना' में 'संपादकीय' वक्तव्य इतने बड़े विस्तृत होकर प्रकाशित हैं कि उन्हें 'संपादकीय आलेख' का नाम दिया जा सकता है। किंतु बाद की आलोचना में यह 'संपादकीय आलेख' "यह अंक" शीर्षक से संपादकीय टिप्पणी के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। इसके कई कारण हैंएक तो यह कि नामवर सिंह आजीविका के लिए

'जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय', नई दिल्ली में प्रोफेसर थे, दूसरी तरफ हिंदी आलोचकों में उनके जैसे वक़्ता अन्य कोई दिखाई नहीं पड़ता, जिसके कारण उन्हें सभा संगोष्ठियों की भागदौड़ वाली ज़िंदग़ी से जुड़े रहे। इन सामान्य कारणों से अनुमान लगाया जा सकता है कि 'आलोचना' पत्रिका के संपादक के संपादक-व्यक्तित्त्व की सीमाओं का कारण क्या है? दूसरी तरफ, नामवर सिंह संपादकीय वक्तव्य तभी लिखते थे, जब उनके पास विचारधारा, कवि-लेखक, अथवा आलोचक अथवा किसी समस्या, से जब उन्हें बड़ी गंभीरता से जूझना होता था, तभी वह संपादकीय वक्तव्य या आलेख लिखते हुए देखे जा सकते हैंजिसका सुंदर उदाहरण 'दूसरी परंपरा की खोज' के संबंध में 'कविता की दूसरी पंरपरा' (नवांक-83) का संपादकीय, या हिंदी नवजागरण की समस्याएँ (नवांक-79) अथवा नागार्जुन और त्रिलोचन पर लिखा गया उनका संपादकीय। स्पष्टतः कहा जा सकता है कि नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' पत्रिका के प्रत्येक अंकों में संपादकीय का न होने का तात्पर्य उनके संपादक-व्यक्तित्त्व की अकुशलता का प्रमाण नहीं है, बल्कि संपादकीय विवेक का संबंध उसके प्रकाशन के पीछे की अंतदृष्टियों से होता है, उसके मूल्यवान सामग्री से होता है, साथ-ही-साथ उसके स्तरीय होने पर स्पष्ट होता है। कहना न होगा कि कई अंकों में संपादकीय वक्तव्य न होने के बावजूद, नामवर सिंह संपादित 'आलोचना' हिंदी आलोचना की सबसे सक्रिय पत्रिका रही है। उसका कारण यह है कि ''नामवर सिंह के लिए 'आलोचना' पत्रिका के संपादन का अर्थ थाजड़ साहित्याभिरुचि और सैद्धांतिक संकीर्णता के विरुद्ध संघर्ष! निष्क्रिय और यथास्थितिवादी पोषक रसास्वाद के विरुद्ध तथा सार्थक सक्रिय मूल्यांकन के पक्ष में वैचारिक संघर्ष।''[48]

हिंदी आलोचना में जिस सक्रिय आलोचनात्मक संघर्षों के साथ नामवर सिंह की उपस्थिति रही, उसी सक्रियता के साथ 'आलोचना' भी लगभग ढाई दशक तक हिंदी आलोचना के शिखर पर विद्यमान रही। यह नामवर सिंह के संपादकीय विवेक का परिणाम है कि जिस भी स्वरूप में उन्हें

वह प्राप्त हुई, उसे उससे कई दर्जे ऊपर पहुँचाते हुए हिंदी आलोचना में उसके महत्त्व को चिरस्थायी बना दिया। यह नामवर सिंह की संपादकीय दूरदर्शिता का ही परिणाम है कि 'स्क्रूटिनी' पत्रिका (एफ. आर. लीविस द्वारा संपादित) और 'न्यू लेफ़्ट रिव्यू' जैसे ज्ञान, साहित्य आदि की स्तर वाली पत्रिकाओं के समकक्ष यदि हिंदी भाषा एवं साहित्य की किसी पत्रिका को रखा जाएगा तो वह 'आलोचना' पत्रिका ही होगी, ऐसा मेरा विश्वास है। और इसकी परीक्षा की जा सकती है।

संदर्भ :

1. दृष्टव्यकुम्हार, छोटाराम. 'आलोचना' संदर्भ कोश : 'आलोचना' पत्रिका का सर्वेक्षण और मूल्यांकन. जोधपुर. राजस्थानी ग्रंथागार, 1999. पृ. सं.- 03-15 तक में किया गया 'आलोचना' पत्रिका के इतिहास संबंधी अध्ययन। इस अध्ययन में उन्होंने 1951-1967 तक के दौर को 'पहला चरण' कहा है और 1967-1990ई. तक के दौर को 'दूसरा चरण' कहा है।
2. वही.
3. प्रभात. 'आलोचना' पत्रिका की समीक्षा'विकल्प' (अंक-2) नवंबर, 1967 ई., (संपा. शैलेश मटियानी. इलाहाबाद) : पृ. सं. 255.
4. कुम्हार, छोटाराम. 'आलोचना संदर्भ कोश : 'आलोचना' पत्रिका का सर्वेक्षण और मूल्यांकन. जोधपुर. राजस्थानी ग्रंथागार, 1999. पृ. सं. 11.
5. वही. पृ. सं. 11.
6. वही. पृ. सं. 11.
7. वही. पृ. सं. 11.
8. सिंह, विजेंद्रनारायण. ''सर्वहारा से सहारा तक''. पाखी (नामवर सिंह पर केंद्रित अंक), (संपा. - प्रेम भारद्वाज) अक्टूबर, 2010 : पृ. सं. 160.
9. अग्रवाल, पुरुषोत्तम. शिवदान सिंह चौहान. नई दिल्ली : साहित्य अकादमी, 2007. में भारतीय साहित्य के निर्माता, (मानोग्राफ) पृ. सं. 27-28 पर उल्लिखित विचार.
10. वही. पृ. सं. 27.
11. वही. पृ. सं. 27.
12. वही. पृ. सं. 28.
13. दृष्टव्य. मधुरेश द्वारा लिखित पुस्तक'मार्क्सवादी आलोचना और शिवदान सिंह चौहान' का सर्मपण पृष्ठ.
14. मधुरेश. मार्क्सवादी आलोचना और शिवदान सिंह चौहान. पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2011 : पृ. सं. 76.
15. वही. पृ. सं. 91.
16. वही. पृ. सं. 91.

17. शैलेश मटियानी द्वारा संपादित 'विकल्प' पत्रिका (प्रवेशांक), मई, 1967 ई. में प्रकाशित 'आलोचना' पत्रिका संबंधी सूचनाओं का विज्ञापन.

18. मधुरेश. मार्क्सवादी आलोचना और शिवदान सिंह चौहान. पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2011 : पृ. सं. 93.

19. वही. पृ. सं. 97.

20. सिंह, नामवर. आत्मकथा-2. "रचना और आलोचना के पथ पर". 'तद्भव' (अंक-03) (संपा. -अखिलेश) अप्रैल, 2000 : पृ. सं. 14.

21. वही. पृ. सं. 14.

22. वही. पृ. सं. 14.

23. दृष्टव्य. मधुरेश. मार्क्सवादी आलोचना और शिवदान सिंह चौहान. पंचकूला : आधार प्रकाशन, 2011 : पृ. सं. 90 पर इस संदर्भ में उल्लिखित विचार.

24. सिंह, नामवर. साक्षात्कार. "अब तक क्या किया, जीवन क्या जिया" साक्षात्कारकर्त्ता-असद ज़ैदी और मंगलेश डबराल. 'कहना न होगा' संक. संपा. समीक्षा ठाकुर. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन, 1994. पृ. सं. 140.

25. सिंह, नामवर. आत्मकथा-2, "रचना और आलोचना के पथ पर". 'तद्भव' (अंक-03) (संपा. अखिलेश) अप्रैल, 2000 : पृ. सं. 15-16.

26. पांडेय, मैनेजर. समर्पण पृष्ठ. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका. चंडीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, 1989.

27. पांडेय, मैनेजर. भूमिका. "संग्रहत्याग न बिनु पहिचाने". साहित्य के समाशास्त्रा की भूमिका। चंडीगढ़ : हरियाणा साहित्य अकादमी, 1989. पृ. सं.14.

28. सिंह, नामवर. आत्मकथा-2 "रचना और आलोचना के पथ पर". 'तद्भव' (अंक-03) (संपा. अखिलेश) अप्रैल, 2000 : पृ. सं. 15.

29. वही. पृ. सं. 15.

30. वही. पृ. सं. 16.

31. सिंह नामवर. संपादकीय. 'आलोचना' (नवांक-84), जन-मार्च, 1988 : पृ. सं. 4.

32. वही. पृ. सं. 04.

33. वही. पृ. सं. 04.

34. श्रीवास्तव, परमानंद. "नामवर सिंह का आलोचनात्मक संघर्ष और 'आलोचना' का संपादन". नामवर के विमर्श. संपा. सुधीश पचौरी. नई दिल्ली : प्रवीण प्रकाशन, 1995. पृ. सं. 339.

35. श्रीवास्तव, परमानंद. " 'आलोचना' का संपादन और नामवर सिंह". 'दस्तावेज़' (अंक-52) संपा. (विश्वनाथ प्रसाद तिवारी) जुलाई-सितं., 1991 : पृ. सं. 22.

36. श्रीवास्तव, परमानंद. "नामवर सिंह का आलोचनात्मक संघर्ष और 'आलोचना' का संपादन". नामवर के विमर्श. संपा. सुधीश पचौरी. नई दिल्ली : प्रवीण प्रकाशन, 1995. पृ. सं. 342.

37. वही. पृ. सं. 345.

38. वही. पृ. सं. 335.

39. वही. पृ. सं. 335.

40. सिंह, नामवर. आत्मकथा-2 "रचना और आलोचना के पथ पर". 'तद्भव' नवांक-03 (संपा. अखिलेश.) अप्रैल, 2000 : पृ. सं. 15.

41. श्रीवास्तव, परमानंद. "नामवर सिंह का आलोचनात्मक संघर्ष और 'आलोचना' का संपादन". नामवर के विमर्श. संपा. सुधीश पचौरी. नई दिल्ली : प्रवीण प्रकाशन, 1995. पृ. सं. 334.

42. सिंह, नामवर. आत्मकथा-2 "रचना और आलोचना के पथ पर". 'तद्भव' (नवांक-03) (संपा. अखिलेश.) अप्रैल, 2000 : पृ. सं. 15.

43. वही. पृ. सं. 15.

44. वही. पृ. सं. 15.

45. श्रीवास्तव, परमानंद. "नामवर सिंह का आलोचनात्मक संघर्ष और 'आलोचना' का संपादन". नामवर के विमर्श. संपा. सुधीश पचौरी. नई दिल्ली : प्रवीण प्रकाशन, 1995. पृ. सं. 342.

46. वही. पृ. सं. 342.

47. वही. पृ. सं. 335.

48. वही पृ. सं. 333.